“ब्रिटिशकालीन पूर्णिया क्षेत्र में वाणिज्यिक फसल “नील” का विकास तथा
रैय्यतों के शोषण एवं प्रतिरोध का ऐतिहासिक अवलोकन
(1775 से 1917)”

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय कामेश्वरनगर, दरभंगा

के

इतिहास (सामाजिक विज्ञान संकाय)

में

पी–एच0 डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रारूप

शोध पर्यवेक्षक

प्रो0 नैय्यर आजम
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग
ललित नारायण मिथिला
विश्वविद्यालय, दरभंगा

शोधार्थी

मुकेश कुमार रजक
वर्ग क्रमांक–31
पैट रौल नं0–E2210039

1. शोध परियोजना का शीर्षक :
"ब्रिटिशकालीन पूर्णिया क्षेत्र में वाणिज्यिक फसल "नील" का विकास तथा रैय्यतों के शोषण एवं प्रतिरोध का ऐतिहासिक अवलोकन (1775 से 1917)"

2. प्रस्तावना (Introduction)/शोध के मुद्दे :

''नील'' केवल एक पौधा या खरीद–बिक्री की वस्तु नहीं बल्कि नील एक इतिहास, एक क्रांति का रंग, एक व्यवस्था और सबसे बढ़कर भारत में उपनिवेशवाद की नीव एवं विकास की मजबूत ईट रहा है। नील जहाँ एक तरफ अंग्रेजी राज और यूरोपीय (खास.कर अंग्रेज व्यापारियों) व्यापारियों के लिए लाभ एवं लोभ की वस्तु रही है वहीं यह भारतीयों खासकर इसकी खेती से जुड़े रैयतों के लिए उत्पीड़न शोषण और अंग्रेजी क्रूरता का प्रतीक रहा है। और इस शोषण–उत्पीड़न और क्रूरता के शिकार बंगाल एवं बिहार के रैय्यत सबसे अधिक हुए हैं। बिहार में भी खासकर उत्तर बिहार के रैय्यतों के दर्द एवं आँसुओं के कहने ही क्या ?

उत्तर बिहार के चम्पारण में नील की खेती से जुड़े रैय्यतों पर हो रहे निलहों (नील प्लांटर्स) के अत्याचार की कहानी जानने 1917 में जो मोहन दास करमचंद गाँधी चम्पारण आए, उन्होंने सत्य और अहिंसा पर आधारित अपने सत्याग्रह के हथियार का भारत में प्रथम बार सफल प्रयोग कर चंपारण की जनताओं, नील के आमनवीय खेती और निलहों का अत्याचार से मुक्त करा कर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के एक नये युग (गाँधी युग) की न केवल शुरूआत की बल्कि यही चंपारण में मोहन दास करमचंद गाँधी भारत का ''महात्मा गाँधी'' बने ।

नील एक प्राकृतिक रंजक है जो एक पौधे के रूप में खेतों में उगाया जाता है और इसे अग्रेजी में Indigo नाम से जाना जाता है। जबकि इसका वानस्पतिक नाम Indigofera Tinctoria (इंडिगोफेरा टिंकटोरिया) है। भारत में

नील के उत्पादन एवं रंजक के रूप में इसके इस्तेमाल की जानकारी प्राचीन दार से ही मिलता है। कालांतर में इतालवी अन्वेषक मार्कोपोलो ने भी भारत में नील उत्पादक उद्योग का विस्तृत वर्णन किया है और 1248 में केरल के कोल्लम में नील बनते देखा था ।

मध्य युग में कर्नाटक, मद्रास, सूरत, अहमदाबाद, सिंध और आगरा में काश्तकार स्वेच्छा से इसकी खेती किया करते थे । अकबर के शासनकाल की रचना आईन–ए–अकबरी (फारसी,1590) में आगरा में पैदा किए जानेवाले नील को उत्तम क्वालिटी का बताया गया है।

जब 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पुर्तगाली अन्वेषक वासको–डी–गामा ने भारत पहुँचने का समुद्री रास्ता खोजा और व्यापार बढ़ा तो इसके बाद यूरोप में मसालों की माँग के साथ–साथ नील की माँग और खपत भी बढ़ने लगी । पुर्तगाल, निदरलैंण्ड (डच) तथा इग्लैण्ड यूरोप के बाजार के लिए नील आयातक प्रमुख देश बनकर उभरे। यूरोप के ताकतवर देशों ने अपने उष्णकटिबंधीय उपनिवशों में नील की खेती शुरू करवाई और सबसे ज्यादा खेती अमेरिकी महाद्वीप क्षेत्र जमैका, वर्जिन, आयरलैण्ड तथा दक्षिणी कैरोलिना में हुई ।

18वीं सदी में ब्रिटिश कपड़ा व्यापारियों को इंडिगो डाइ (नीलरंग) की बेहद जरूरत महसूस हुई क्योंकि 1776 में अमेरिकी स्वतत्रता संग्राम के कारण अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन के बीच संबंधों में तनाव पैदा हो गया फलस्वरूप अमेरिका ने ग्रेट ब्रिटेन को डाई की सप्लाई बंद कर दी । वेस्ट इंडीज में गुलामों के विद्रोह से भी ग्रेट ब्रिटेन को नील की सप्लाई को बहुत बड़ा धक्का लगा। ऐसे हालात में ब्रिटिश विनिर्माता डाई के लिए दूसरे देशों पर आश्रित हो गए। संयोगवश ये घटनाएँ ऐसे समय हुई जब ब्रिटिश वाणिज्यवाद भारत में अपनी जड़े जमा चुका था ।

1757 के प्लासी के युद्ध और 1764 के बक्सर के युद्ध द्वारा भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से ब्रिटिश शासन की नीव पड़ चुकी थी और 1765 की इलाहाबाद की संधि स कंपनी को भारत में बंगाल, बिहार, उड़ीसा क्षेत्र में दीवानी अधिकार प्राप्त हो चुके थे। धीरे–धीरे भारत में कंपनी शासन विस्तृत और मजबूत हो रहा था, वाणिज्यवादी अवधारणा जड़े जमा रही थी । एसे ही समय में अमेरिका स्वतंत्रता संग्राम की घटना ने भारतीय इतिहास और खेतों में ''नील की खेती' के कार्य को जन्म दे दिया।

विधिवत रूप से नील की व्यवसायिक खेती तथा उत्पादन का काम अंग्रेजों ने शुरू किया। बंगाल और बिहार में अंग्रेज अधिकारी व गैरअधिकारी दोनों तरह के लोग जिनके पास निवेश के लिए पूँजी थी ने फैक्ट्री सिस्टम के माध्यम से नील की खेती की आधुनिक तौर–तरीके से शुरूआत की।

मि0 बोनौड ने 1757 ई0 में कलकत्ता आने के साथ ही उसने बंगाल में नील की नई फैक्ट्रियाँ आरंभ की । बिहार में यूरोपियना के द्वारा नील के उत्पादन का पहला रिकार्ड 1778 के आस–पास का है। मि0 अलेक्जेंडर नाएल (नोएल एंड कंपनी के संस्थापक) को इस इंडस्ट्री के मुख्य अगुआ होने का श्रेय दिया जाता है।

नील बागान पूरी तरह निजी और पूँजीवादी उद्यम थे । लेकिन 1780 के बाद से धीरे–धीरे ईस्ट इंडिया कंपनी के डारेक्टरों का सरकारी संरक्षण, सुरक्षा और माली सहयोग मिलने लगा। निचेल बंगाल के कुछ जिलों को नील की खेती के लिए चुना गया। गंगा के मैदान और बिहार में पूर्णिया, भागलपुर और मुजफ्फरपुर क्षेत्र की उपजाऊ मिट्टी को देखते हुए सबसे पहले इन जगहों को नील की खेती के लिए चुना गया था। कालांतर में बंगाल और बिहार में पैदा किए गए नील की क्वालिटी ने सभी रेशों को पीछे छोड़ दिया और यह 'शेष विश्व की सप्लाई का मुख्य स्रोत बन गया'। 1789 में ब्रिटेन ने भारत से

3, 71, 461, पांउड नील आयात किया। 1802 ई0 तक भारत में नील का इतना उत्पादन होने लगा कि अमेरिका से नील के आयात की आवश्यकता ही खत्म हो गई।

1833 से पहले नील प्लांटरों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी क्योंकि वे लीज पर जमीन लेकर खेती करते थे, उनके पास जमीन से जुड़ा कोई अधिकार नहीं था। लेकिन 1833 के चार्टर एक्ट के द्वारा अब इंग्लैण्ड में पैदा काई भी व्यक्ति ब्रिटेन के किसी भी उपनिवेश में जाकर जमीन खरीद सकता था, व्यापार कर सकता था ओर हमेशा के लिए बस सकता था। फलतः अब वे (अंग्रेज) प्लाटर से जमींदार बन गए और किसान किसान नहीं रहे रैय्यत बन गए ।

अधिक अधिकार मिले तो इनकी (अंग्रेज प्लंटर) ख्वाहिशे बढ़ने लगी। अधिक से अधिक मुनाफा कमाने की दिशा में वे रैय्यत पर भरपूर जुल्म करते, वे किसानों को उनकी पूरी जमीन पर खाद्यान्न के बदले नील की खेती करने के लिए विवश करते, जिसकी वजह से बंगाल में अक्सर अकाल की नौबत आ जाती। 1848 में एक डिप्टी कलेक्टर ईडी लाटूर ने अपनी रिपोर्ट में एक पादरी को उद्धृत करते हुए लिखा था–''ब्रिटेन पहुँचने वाली नील की एक भी गाँठ ऐसी नहीं होती जो मानव रक्त से रंजित न हो।''

1860 के बंगाल नील आयोग के समक्ष जब किसानों न बयान दिया कि ''हमारा गला भी काट दिया जाए तो भी हम खेतों में नील नही बोएँगे। हम उस देश में चले जाएँगे, जहाँ नील के पौधे न कभी बोये गए हैं और न ही देखे गए हैं। हम गोली खा लेंगे मगर नील नहीं बोएँगे।''

इन उद्धरणों से समझा जा सकता है कि बगाल के किसानों को नील की खेती से कितनी नफरत हो गई थी । दोष नील की फसल का नहीं बल्कि खेती कराने की तरीके का था। बंगाल के किसानों की इस व्यथा को दो

मोर्चों –पत्रकारिता एवं रंगमंच से स्वर मिला। ''द हिन्दू पेट्रियाट'' अखबार ने इस मसले को सबकी निगाह में लाने का काम किया । जहाँ इस अखबार ने नील प्लांटरों की शोषण वृत्ति के खिलाफ जनमानस तैयार किया वहीं ''नील दर्पण'' नामक एक नाटक बंगाल में नील की खेती खत्म करने की दिशा मे निर्णायक अह्वान साबित हुआ।

मार्च 1859 में बंगाल के नदिया जिले के गोविन्दपुर गाँव के दो भाईयों दिगम्बर विस्वास और विष्णु बिस्वास क नील की खेती करने से इंकार करने के साथ ही नील विद्रोह की शुरूआत हुई और यह विद्रोह सफल रही। मामले की जाँच के लिए मार्च 1860 को नील आयोग का गठन हुआ। और आयोग ने अगस्त 1860 में अपनी रिपोर्ट पेश की जिसमें इस आयोग ने किसानो की शिकायतों को जायज पाया और बंगाल से नील कीखेती खत्म हो गई।

बंगाल के इलाकों से नील की खेती खत्म होने का नाकारात्मक असर यह हुआ कि नील प्लाटर उत्तर बिहार की तरफ पसरने लगे। हालांकि इस आन्दोलन/विद्रोह क पहले से ही इस इलाके में नील की खेती शुरू हो गई थी। उत्तर बिहार के पूर्णियाँ (1775 से), दरभंगा, मधुबनी, मुजफ्फरपुर, सारण एवं चंपारण के क्षेत्र में नील की खेती 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही शुरू है। बंगाल विद्रोह के बाद उत्तर बिहार में प्लांटरों के द्वारा नील की खेती के फलस्वरूप इस क्षेत्र में भी किसानों के प्रतिरोध उभरे जिसमें 1866–67 में मधुबनी ''पंडौल विद्रोह'' उल्लेखनीय है।

सरकार और जमींदारों के समर्थन के बावजूद तिरहुत के इलाकों में नील की खेती करना मुमकिन नहीं हो पा रहा था। थक–हार कर प्लांटरों न पश्चिम की दिशा में चम्पारण की तरफ खिसकना शुरू किया। इसो बीच 1880 में दरभंगा महाराज ने यह घोषणा कर दी कि उनके राज में नील की खेती नहीं

होगी। लिहाजा तिरहुत के इलाके से उठकर नील की खेती चम्पारण की तरफ चली गई।

चंपारण में नील की पहली फैक्ट्री 1820 ई0 में मि0 स्टवर्ट द्वारा बारा में स्थापित हुई थी । इसके बाद तुरकौलिया, पिपरा, मोतिहारी, राजपुर आदि में कोठियाँ स्थापित हुई । डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद अपनी पुस्तक 'सत्याग्रह इन चम्पारण' में लिखते हैं कि गांधी जब वहाँ पहुँचे, तो उस वक्त तक पुरे चम्पारण में 70 से अधिक कोठियाँ स्थापित हो चुकी थी। अब आप समझिए कि चम्पारण के 2220 गाँवों मेसे 1938 गाँवों पर एक तरह से नील प्लांटरों की हुकूमत चलती थी। इन प्लांटरों को फैलने के लिए इतना बड़ा इलाका कहीं नहीं मिला था, न बंगाल में और न तिरहुत में।

नील प्लांटर चम्पारण में दो तरीके से नील की खेती कराते थे–

(1) जीरात

(2) असामीवार

''जीरात'' खेती वह थी जिसमें प्लांटर खुद अपने संसाधनों से नील उगाता था जबकि ''असामीवार'' खेती में नील की खेती करने का जिम्मा रैय्यत का होता था। असामीवार खती की चम्पारण में तयशुदा व्यवस्था था जिसे –''तिनकठिया प्रथा'' के नाम से जाना जाता है। इस व्यवस्था में रैय्यत को अपनी जमीन के कुछ तय हिस्से (पहले पाँच कट्ठा प्रतिबीघा बाद में तीन कट्ठा प्रति बीघा) पर नील की खेती करनी पड़ती थी। जिससे इसका नाम तीनकठिया पड़ गया।

चंपारण में पहला नील विद्रोह 1867 में लाल सरैयाकोठी में हुआ और उसी साल इससे पहले मधुबनी के पंडौल में विद्रोह (1866–67) हो चुका था । महज चार साल बाद 1871 में फिर से विद्रोह शुरू हो गया। यह विद्रोह लगातार चलता रहा। दिलचस्प बात यह है कि जब–जब रैय्यत ने व्रिदोह

किया, प्लांटरों ने मेहनताना बढ़ाया, मगर उन्होंने कभी बुनियादी सुधार नहीं किए। फलस्वरूप 1906 में एक बार फिर व्रिद्रोह भड़का और इस बार तो रैय्यतों ने तेल्हाड़ा फैक्ट्री के मैनेजर ब्लूम फील्ड की हत्या ही कर दी। इतना ही नहीं इस घटना के एक साल बाद ही 1907 में साठी–कोठी से जुड़े किसानों ने विद्रोह कर दिया और नील बोने से इंकार किया। इस विद्रोह में साठी के प्रभावशाली किसान शेख गुलाब समेत कई लोगों को जेल भेज दिया गया और जेल में उन पर काफो ज्यादतियाँ की गई। मगर अंततः साठी के किसान सफल हुए और मजबूर होकर फैक्ट्री वालो को नील की खेती छोड़नी पड़ी। इस प्रकार साठी के इलाके से नील की खेती हमेशा के लिए खत्म हो गई । साठी विद्रोह की विशेषता और ऐतिहासिकता यह है कि व्रिदोह तो कई बार हुए मगर पहली दफा किसी खास इलाके के किसानों ने नील को खेती का जुआ उतार फेंकने में सफलता हासिल की। इस सफलता क साथ ही साठी के किसान शेख गुलाब की प्रसिद्धि दूर–दूर तक फैल गई।

साठी की तरह 1908 की परसाकोठी की घटना का भी नील की खेती और चंपारण के इतिहास में विशेष स्थान है। गोरले साहब अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं कि हिंसा की पहली वारदात 16 अक्टूबर 1908 को घटी जब परसोकोठी के पास की कोठी के एक चपरासी की लोगों ने पिटाई कर दी। यह बात धीरे–धीरे तेज हो गई और परसा, सुरकैया अलैया आदि कई स्थानो पर हिंसा की घटनाएँ हुई। ब्रिटिश सरकार ने भारो मिलिट्री बल का प्रयोग कर किसानों पर अत्याचार और दमनचक्र चलाया। इस घटना में सरकार ने शीतल राय, मारवाड़ी व्यापारी रधूमल और उनके गुमाश्ता रामस्वार्थ को मुख्य अभियुक्त बनाया। इसमें शीतल राय को जेल की कड़ी सजा सुनाई गई। सरकार इस विद्रोह का दमन करने में सफल रही। किसानों के पक्ष में सिर्फ इतना हुआ कि

नील की खेती को मेहनताना बढ़ा दिया गया और तीन कट्ठे के बदले दो कट्ठा प्रति बीघा में नील की खेती करवाने की बात तय हुई।

1907 के साठी विद्रोह के नायक शेख गुलाब और 1908 के परसाकोठी विद्रोह के नायक शीतल दास 1917 के चम्पारण सत्याग्रह में नजर नहीं आते। जब गाँधी चम्पारण आते हैं तो उन्हें राजकुमार शुक्ल, पीर मोहम्मद मुनिस, लोमराज हंस, हरबंस सहाय आदि मिलते हैं। मगर शीतल राय और शेख गुलाब का जिक्र कहीं नहीं है।

1908 के इस आन्दोलन का असर देख कर अंग्रेज इतने हैरान थे कि उन्हें यह समझ नहीं आ रहा था कि इतनी नियोजित क्रांति स्थानीय किसानों ने की है। फलतः सरकार ने नील से जुड़े मुद्दों की जाँच के लिए चम्पारण के एक पूर्व अधिकारी गोरले को 18 नवंबर 1908 को आदेश दिया। यह जाँच पूरी तरह अनौपचारिक होनी थी। इसमें किसी तथ्य की रिकार्डिंग नहीं करनी थी और रैय्यतों से आन्दोलन की वजह पता करना था। गोरले को यह सख्त निर्देश दिया गया था कि वह यह जाँच कार्य कुछ इस तरह करें कि किसी को जाहिर न हो कि सरकारी जांच हो रही है। गोरले ने अपनी कॉन्फिडेंशियल रिपोर्ट 19 जनवरी 1909 में पूरी कर ली और इस रिपोर्ट से यह साफ था कि लगभग सारी गलतियाँ प्लांटरों की ही थी। 1909 से ही लगातार रैय्यत और अनेकों नेताओं के जरिये गोरले की रिपोर्ट को सार्वजनिक करने की माँग हुई परन्तु यह रिपोर्ट कभी सार्वजनिक नहीं की गई। ब्रजकिशोर प्रसाद द्वारा बिहार विधान परिषद में माँग किए जाने के बावजूद इसे गुप्त रखा गया और सरकारी फाइलों से यह रिपोर्ट सीधे बिहार सरकार के अभिलेखागारों में पहुँच गई ।

1867 से 1908 तक हर नियमित अंतराल पर चम्पारण में किसानों का गुस्सा नील की खेती को लकर फूट पड़ता था और यह हिंसक आन्दोलन का रूप ले लेता था। मगर 1909 से 1917 के बीच हिंसक वारदातें कम हुई।

10 अप्रैल 1917 को गाँधी ने बिहार की धरती पर पाँव रखा और 15 अप्रैल 1917 को चम्पारण की धरती मोतिहारी में गाँधी का आगमन भारतीय इतिहास, राष्ट्रीय आन्दोलन, नील की खेती और चंपारण के किसान पर अमिट छाप छोड़ गया। जो गाँधी चम्पारण में नील की खेती से जुड़े किसानों की दशा जानने और देखने आए थे उन्होंने सत्य और अहिंसा पर आधारित बिना चोट पहुँचाए सत्ता को जनपक्षण्धर बनाने वाले हथियार –''सत्याग्रह'' का प्रयोग कर चंपारण के रैय्यतों को तीनकठिया प्रथा और नील की अमानवीय खेती तथा निलहों के अत्याचार से मुक्ती दिलायी ।

प्रस्तुत शोध शीर्षक का मुख्य उद्देश्य यह है कि चम्पारण के नील की खेती एवं व्यापार तथा रैय्यतों की स्थिति को केन्द्र में रख कर लेखन, अध्ययन एवं शोधपरक कई कार्य हुए हैं, परन्तु उत्तर बिहार के अन्य क्षेत्र में भी नील की खेती एवं व्यापार तथा रैय्यतों पर अत्याचार हो रहे थे किन्तु उन पर न के बराबर लेखन एवं शोध सामग्री उपलब्ध है। और खास कर पूर्वोत्तर बिहार (ब्रिटिशकालीन पूर्णिया) में नील की खेती एवं इससे जुड़े रैय्यतों के शोषण एवं प्रतिरोध पर तो इतिहासपरक लेखन एवं अध्ययन सामग्री का घोर आभाव है।

3. पूर्व अध्ययन की समीक्षा (Review of Literature):

बिहार में नील की खेती और व्यापार एवं रैय्यतों पर इसके प्रभाव एवं प्रतिराध पर अनेकों विद्वानों, शोधार्थियों एवं इतिहासकारों ने लेखन कार्य किए हैं और बिहार में भी उत्तर बिहार एवं खासकर चंपारण में नील की खेती एवं चम्पारण सत्याग्रह पर अनेकों शोधपरक एवं पुस्तकीय लेखन कार्य हुए हैं। चम्पारण सत्याग्रह में गाँधी के सहयागी एवं भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी पुस्तक (1) ''चम्पारण में महात्मा गाँधी'' (2) ''सत्याग्रह इन चम्पारण'' में काफी विस्तृत रूप से उत्तर बिहार के खासकर चंपारण में नील की खेती रैय्यतों पर निलहों के अत्याचार एवं रैय्यतों के प्रतिरोध आदि

अन्य पहलू पर लिखा है। **मिनडेन विल्सन** ने भी अपनी रचना ''हिस्ट्री ऑफ बिहार इंडिगो फैक्ट्रीज'' में उत्तर बिहार में नील की फैक्ट्रियों की जानकारी दी। इसके अलावा प्रभात कुमार शुक्ल ने भी अपनी चर्चित पुस्तक ''नील की खेती और अंग्रेजी राजः बिहार के किसानों का पतिरोध (1780–1917) में उत्तर बिहार में नील की खेती एवं व्यापार तथा जमींदार, रैय्यता एवं नीलहों के संबंध तथा नील की खेती के आर्थिक एवं उपनिवेशवादी पहलुओं पर गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्रसिद्ध इतिहासकार के0 के0 दत्ता ने भी ''हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट इन बिहार, खंड–3 में चम्पारण में नील की खेती एवं सत्याग्रह का विस्तृत उल्लेख किया है।

किन्तु उपरोक्त सभी रचनाओं एवं अन्य रचनाओं यथा –

1. बी. बी. मिश्रा–सेलेक्टेड डॉक्यूमेंट औन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारण 1917–18
2. पापिया घोष–पीजेन्ट्स, प्लांटर्स एवं गाँधी (अप्रकाशित लेख 1991, ICHR पुस्तकालय, नई दिल्ली)
3. एस0 के0 मित्तल–हिस्ट्री ऑफ इंडिगो इंडस्ट्री इन नॉर्थ बिहार, 1817–1917 : ए पोलिटिकल एंड इकोनोमिक स्टडी विद स्पेशल रेफ्रेसं टु चंपारण (अप्रकाशित पांडुलिपि, ICSSR डॉक्यूमेंटेशन सेंटर, नई दिल्ली)

आदि में बिहार में उत्तर बिहार के और उत्तर बिहार में भी मुख्यरूप से चम्पारण क्षेत्र में नील की खेती एवं व्यापार तथा रैय्यतों की स्थिति को केन्द्र में रख कर ही लेखन, अध्ययन एवं शोध का कार्य हुआ है।

उत्तर बिहार के अन्य क्षेत्रों में भी नील की खेती एवं व्यापार तथा रैय्यतों पर अत्याचार हो रहे थे किन्तु उन पर न के बारबर लेखन एवं शोध सामग्री उपलब्ध है और खासकर ब्रिटिशकालीन पूर्णियाँ क्षेत्र के संदर्भ में तो इतिहासपरक लेखन सामग्री का घोर अभाव दिखता है।

4. शोध का उद्देश्य/महत्त्व/प्रासंगिकता (Objectives / Importance/ Relivence of Research) :

चम्पारण में नील की खेती, निलहों के द्वारा रय्यतों के शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार तथा गाँधी के चंपारण सत्याग्रह पर काफी लिखा एवं शोध किया जा चुका है। किन्तु इसी उत्तर बिहार के पूर्वी भाग में स्थिति सन् 1770 में सृजित पूर्णियाँ जिला में हमें न केवल 1775 में स्थापित प्रथम नील फैक्ट्री ''नील गंज'' की जानकारी I.C.S., L.S.S. O' Malley द्वारा 1911 में लिखित पूर्णियाँ जिला गजेटियर से मिलती है बल्कि इस क्षेत्र में नील की सघन खेती, दर्जनों नील फैक्ट्रियो की स्थापना, प्रति वष हजारों मन नील उत्पादन एवं निर्णायत तथा नील के उत्पादन से जुड़े प्रक्रियाएँ एवं तंत्रों आदि की भी जानकारी मिलती है । इसके अलावा अन्य कई प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों यथा–

- An Account of the District of Purnia by F.H. Buchaman, 1809&11
- Final Report on the Survey and Settlement Operation in Purnea (1901-1908) by Mr.J. Byrne m, I.C.S.
- दरभंगा राज के अभिलेखागार में उपलब्ध भूमि अभिलेख
- Statistical Account of Bengal in 1876-77

आदि से हमें मूल क्षेत्र में नील की खेती एवं व्यापार, रैय्यतों का स्थानीय जमींदार एवं अंग्रेज निलहों द्वारा शोषण उत्पीड़न एवं अत्याचार तथा प्रतिरोध एवं आक्रोश की भी जानकारी मिलती है किन्तु इस क्षेत्र (ब्रिटिश कालीन पूर्णिया जिला) के नील उत्पादन एवं व्यापार से जुड़े विषय पर विस्तृत शोध एवं लेखन का आभाव मिलता है। जबकि इसी क्षेत्र में पूर्व में स्थित बंगाल में नील की खेती एवं 1859 में नील विद्रोह तथा इसी क्षेत्र के पश्चिम में स्थित तिरहुत चम्पारण क्षेत्र के 1917 में हुए चम्पारण सत्याग्रह या चंपारण नील आन्दोलन पर काफी शोध एवं लेखन का कार्य हुआ है और अब भी जारी है। अतः उत्तर पूर्व बिहार में स्थित तीन नदियों (कोसी, महानंदा गंगा) से घिरे इस

क्षेत्र में नील की खेती एवं उससे जुड़े पहलुओं का गंभीर एवं विस्तृत सर्वेक्षण की आवश्यकता है ताकि उत्तर बिहार में नील की खेती से जुड़े इतिहास लेखन एवं शोध में इस बड़े अनछुए एवं तिरस्कृत क्षेत्र के इतिहास एवं रैय्यतों के शोषण उत्पीड़न पर प्रकाश डाला जा सके तथा इतिहास के पन्नों में इसे दर्ज किया जा सके।

5. परिकल्पना (Hypothesis) :

प्रस्तावित शोध कार्य कई परिकल्पनाओं पर आधारित होगा–

1. ब्रिटिशकालीन पूर्णियाँ क्षेत्र में वाणिज्यिक कृषि की क्या स्थिति थी ?
2. ब्रिटिशकालीन पूर्णियाँ क्षेत्र में नील की खेती कैसे और क्यों शुरू की गई ?
3. ब्रिटिशकालीन पूर्णियाँ क्षेत्र में नील की खेती से रैय्यतों को लाभ हुआ या हानि ?
4. ब्रिटिशकालीन पूर्णियाँ क्षेत्र में नील की खेती के स्टॉक होल्डर कौन–कौन थे और उनके बीच किस प्रकार का संबंध था ?
5. ब्रिटिशकालीन पूर्णियाँ क्षेत्र में नील की खेती और बिहार के अन्य इलाके के नील की खेती के बीच क्या अंतर था ? यदि नहीं तो कैसी समानताएँ थी ?
6. क्या चंपारण की तरह ब्रिटिशकालीन पूर्णियाँ क्षेत्र में भी नील की खेती से रैय्यत त्रस्त थे ?
7. क्या कारण है कि चंपारण के नील की खेती की चर्चा इतिहास में जितनी है उतनी बिहार के अन्य क्षेत्रों की नहीं ?
8. ब्रिटिशकालीन पूर्णियाँ क्षेत्र में नील की खेती के क्या–क्या प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं ?
9. क्या चंपारण की तरह ब्रिटिशकालीन पूर्णियाँ क्षेत्र में नील की खेती से जुड़े रैय्यत भी एकजुट हुए और क्या इस क्षेत्र में कोई प्रतिरोध हुआ ?
10. चंपारण सत्याग्रह और चंपारण एग्रेरियन बिल का उत्तर–पूर्व (पूर्णियाँ) के रैय्यतों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

11. ब्रिटिशकालीन पूर्णियाँ क्षेत्र के बनैली राजा कृत्यानंद सिंह का नील की खेती और चपारण एग्रेरियन कमिटि से क्या संबंध था ?
12. पूर्णियाँ क्षेत्र में नील की खेती कैसे समाप्त हुई ?

उपरोक्त परिकल्पनाओं के अलावा कई अन्य परिकल्पनों को भी प्रस्तावित शोध कार्य में उजागर किया जाएगा।

6. ज्ञान के क्षेत्र में योगदान (Contribution of Knowledge) :

प्रस्तत शोध शीर्षक बिहार के ब्रिटिशकालीन पूर्णियाँ क्षेत्र में नील की खेती एवं रैय्यतों के शोषण एवं प्रतिरोध पर केन्द्रित है। जैसा कि ज्ञात है 18वीं शताब्दी के बीच में उत्तर बिहार में चंपारण एवं तिरहुत मिथिला क्षेत्र में भी नील की खेती तथा रैय्यतों के शाषण एवं प्रतिरोध हुए हैं और इस क्षेत्र के संबंध में काफी जानकारी उपलब्ध है किन्तु उत्तर पूर्व में नील की खेती एवं रैय्यतों के शोषण एवं प्रतिरोध की जानकी नगण्य है। अतः इस शोध कार्य से इस क्षेत्र विशेष में नील की खेती एवं उससे जुड़े पहलुओं में जानने का एवं इस क्षेत्र के इतिहास से निर्माण में मदद मिलेगी।

इस शोध कार्य से बिहार के उत्तर पूर्व क्षेत्र (पूर्णिया जिला) एवं उत्तर पश्चिम क्षेत्र (चंपारण) में नील की खेती एवं रैय्यतों के शोषण एवं प्रतिरोध का तुलनात्मक अध्ययन करने में मदद मिलेगी।

नील की खेतो एवं व्यापार एक आर्थिक मुद्दा है। अतः इस शोध कार्य से बिहार में आर्थिक इतिहास लेखन को मजबूती प्राप्त होगी क्योंकि शोध कार्य में कई नए आर्थिक तथ्यों एवं आंकड़ों को खोजने का कार्य किया जाएगा।

इस शोध कार्य से क्षेत्रीय इतिहास लेखन की प्रवृति/परंपरा को बल मिलेगा। क्योंकि इस शोध कार्य में एक क्षेत्र विशेष पूर्णिया जिले (ब्रिटिश कालीन) को केन्द्र में रख कर शोध कार्य किया जाएगा।

7. अध्ययन क्षेत्र (Scope) :

यद्यपि भारत और बिहार में नील की खेती से जुड़े इतिहास पर कई शोधपरक कार्य हुए है परंतु पस्तावित शोध कार्य का भौगोलिक क्षेत्र बिहार राज्य के उत्तर–पूर्व में स्थित ब्रिटिशकालीन पूर्णिया जिला का क्षेत्र लिया गया है जो मुख्य रूप में उत्तर में नेपाल और पूरब में बंगाल, परिचय में मिथिला क्षेत्र और दक्षिण में गंगा नदी से सीमाएँ बनाता है और यह जिला मुख्य रूप से तीन नदियों पश्चिम में कोसी, पूरब में महानंदा और दक्षिण में गंगा और उत्तर में हिमालय के तराई क्षेत्र के बीच में स्थित है। भौगोलिक रूप से यह क्षेत्र वर्त्तमान समय में नेपाल, चीन, भूटान, बांग्लादेश एवं बर्मा जैसे अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं से काफी निकट है अतः यह काफी सामरिक एवं आर्थिक महत्व का भी क्षेत्र है। यह क्षेत्र वर्तमान समय में ही नहीं ब्रिटिश काल में भी सामरिक एवं आर्थिक गतिविधियों के लिए महत्वपूर्ण रहा है।

उक्त भौगोलिक क्षेत्र में ''नील की खेती'' न केवल कृषि उत्पादन से जुड़ा मुद्दा है बल्कि यह कंपनी/सरकार का प्राप्त होने वाले राजस्व, नील के व्यापार एवं उससे लाभ, पूँजी निवेश, रोजगार, वाणिज्यिक कृषि, आदि आर्थिक पहलुओं से भी गहरे रूप से जुड़ा मुद्दा है अतः यह आर्थिक इतिहास लेखन के क्षेत्र से जुड़ा है।

8. अध्ययन पद्धति (Research Methodology) :

शोध विधि :

प्रस्तावित शोध कार्य को संपादित करने के लिए सूक्ष्म स्तरीय विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति का ऐतिहासिक तथ्यों के आलोक में सहारा लिया जाएगा। इसके अंतर्गत प्रश्नावली के माध्यम से प्राप्त तथ्यों, सरकारी प्रतिवेदनों, अन्य प्रकाशित साहित्यों, पत्र–पत्रिकाओं, शोध पुस्तकों आदि का अवलोकन किया जाएगा।

इस शोध कार्य में सांख्यिकीय एवं सरकारी आँकड़ों का व्याख्यात्मक प्रस्तुतिकरण किया जाएगा तथा इस शोध कार्य में उत्तर बिहार के क्षेत्र विशेष के नील से जुड़े विविध पहलुओं का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जाएगा।

साथ ही इस शोध कार्य में प्रयोग में लायी जानेवाली स्रोत सामग्रियों का इस्तेमाल तटस्थ एवं निष्पक्ष दृष्टिकोण से किया जाएगा।

9. शोध सामग्री की उपलब्धता (Availability of Research Metarial) :

प्रस्तावित शोध कार्य को सफलतापूर्वक संपादित करने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीय–दोनों प्रकार के स्रोतों का प्रयोग किया जाएगा।

प्राथमिक/मौलिक स्रोत : इसमें ब्रिटिशकालीन के I.C.S अधिकारियों के लिखित दस्तावेज, नील के उत्पादन एवं व्यापार से जुड़े नीलहों के दस्तावेज, बंगाल जूडिशियल डिपार्टमेंट, लेंड रेवेन्यू डिपार्टमेंट, पॉलिटिकल डिपार्टमेंट के रिकॉर्ड्स, बिहार एवं उड़ीसा पॉलिटिकल डिपार्टमेंट एवं लैंड रेवेन्यू डिपार्टमेंट के रिकॉर्डस, बिहार एवं उड़िसा लेजिस्लेटिव डिबेट्स, 1912–18, बिहार के जिलों के डिस्ट्रीक्ट गजेटियर, राष्ट्रीय अभिलेखागार एवं बिहार राज्य अभिलेखागार में उपलब्ध मूल दस्तावेज एवं संचिकाएँ, जिला अभिलेखागार में उपलब्ध रिकॉर्डस आदि का सहारा लिया जाएगा।

इसके अलावा नील की खेती से जुड़े इलाकों का भ्रमण कर स्थानीय लोगों से साक्षात्कार किया जाएगा।

क्षेत्र भ्रमण के दौरान नील की खेती एवं आंदोलन एवं प्रतिरोध से जुड़े परिवारों से संपर्क कर उनसे जानकारी प्राप्त की जायेगी तथा स्थानीय लोक कथाओं, कहावतों को भी प्राथमिक स्रोत के रूप में इस्तेमाल किया जाएगा।

द्वितीय स्रोत के रूप में प्रकाशित पुस्तकों का सहारा लिया जायेगा। इसके अतिरिक्त शोध प्रबंध, लेख, पत्र–पत्रिकाएँ एवं समाचार पत्रों की सूचनाओं को शोध कार्य में सम्मिलित कर शोध को उत्कृष्टता प्रदान की जायेगी। साथ ही तथ्यों के संकलन हेतु बिहार राज्य अभिलेखागार पटना, गाँधी संग्रहालय

पटना, अनुग्रह नारायण शोध संस्थान, पटना, गाँधी संग्रहालय, मोतिहारी, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, काशी प्रसाद जयसवाल शोध संस्थान पटना, खुदाबक्श पुस्तकालय, पटना की मदद ली जाएगी।

10. अध्यायीकरण (Chapterization) :

शोध कार्य को निम्नलिखित अध्यायों को ध्यान में रख कर पूरा किया जाएगा–

प्रथम अध्याय	:	ब्रिटिशकालीन पूर्णियाँ क्षेत्र का परिचय एवं नील की खेती तथा व्यापार का इतिहास
द्वितीय अध्याय	:	पूर्णिया में नील की कोठियाँ और खेती प्रणालियाँ
तृतीय अध्याय	:	पूर्णिया में जमींदार, निलहे और रैय्यत के भूमि संबंध
चतुर्थ अध्याय	:	पूर्णियाँ में नील की खेती का अर्थतंत्र एवं धन का निष्कासन
पंचम अध्याय	:	पूर्णिया के रैय्यतों और श्रमिकों एवं भूमि पर नील की खेती का प्रभाव तथा स्थानीय लोगों का प्रतिरोध
षष्ठ अध्याय	:	चम्पारण सत्याग्रह का पूर्णिया में नील की खेती एवं रैय्यतों पर प्रभाव
	:	निष्कर्ष

11. संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. एफ.एच. बुकानन–एन एकाउंट ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ पूर्णिया 1809–11 (पटना, 1928)
2. एल.एस.एस. ओ मैले–डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ पूर्णिया (1911)
3. पी.सी. राय चौधरी –डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ पूर्णिया (1963)
4. एल.एस.एस. ओ मैले–डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ दरभंगा।
5. एल.एस.एस. ओ मैले–डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ चंपारण।
6. जे0 बैरेन–डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ भागलपुर।

7. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद– चंपारण में महात्मा गाँधी
8. विंध्याचल प्रसाद गुप्ता–नील के धब्बे में (बेतिया, बिहार, 1986)
9. के0 के0 दत्ता– हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, 3 खंड (बिहार सरकार, पटना, 1958)
10. बी0 बी0 मिश्रा–सेलेक्टेड डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गाँधीज मूवमेंट इन चम्पारण
11. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद–सत्याग्रह इन चम्पारण
12. भैरव लाल दास–राजकुमार शुक्ल की डायरी
13. मिनडेन विल्सन– हिस्ट्री ऑफ बिहार इंडिगो फैक्टरीज (कलकत्ता, 1908)
14. प्रभात कुमार शुक्ल– नील की खेती और अंग्रेजी राज : बिहार के किसानों का प्रतिराध (1780–1917) (दिल्ली, 2017)
15. डॉ. रात्नेश्वर मिश्र–पूर्णिया का इतिहास (1722–1793) (इंडिया बुक एक्सचेंज, 1978)
16. कृत्यानंद सिंह–Purnea : A Shikar Land
17- दीनबंधु मित्र–नील दर्पण (दि इंडिगो प्लांटिंग मिरर), कलकत्ता, 1961

शोध पर्यवेक्षक

प्रो0 नैय्यर आजम
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग
ललित नारायण मिथिला
विश्वविद्यालय, दरभंगा

शोधार्थी

मुकेश कुमार रजक
वर्ग क्रमांक–31
पैट रौल नं0–E2210039